article IKS Curriculum.docx

by P Pandey

Submission date: 01-Jul-2025 10:18AM (UTC-0500)
Submission ID: 2707747240
File name: article_IKS_Curriculum.docx (32.88K)
Word count: 3309
Character count: 15869

शालिनी मिश्रा

शोध छात्रा

शिक्षाशास्त्र विभाग

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी

ईमेल- shalinimishravns321@gmail.com

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में पाठयक्रम एवं शिक्षण विधियों का अध्ययन

सारांश -

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा मानव सभ्यता की प्राचीनतम और समृद्धतम विरासतों में से एक है। यह एक ऐसी दृष्टि है जो जीवन के भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक पहलुओं के साथ साथ जीवन के विभिन्न आयामों को भी समग्रता से छूती है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक इसने पूरे विश्व को प्रभावित किया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में दार्शनिक, वैज्ञानिक, कलात्मक और आध्यात्मिक धाराएँ शामिल थी। छात्र भौतिक,अध्यात्मिक एवं मानसिक रूप से बहुत ही मजबूत हो जाते थे। इसकी मूल आत्मा केवल जानकारी देना नहीं, अपितु चरित्र निर्माण, आत्मबोध, धर्म-नीति पालन और लोकमंगल की भावना का विकास करना था। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया बड़ी ही अनूठी थी जिससे छात्रों का सर्वांगीण विकास होता था। इसका पाठ्यक्रम आज की विशुद्ध व्यावसायिक शिक्षा से सर्वथा भिन्न था। इसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की विषयवस्तु सम्मिलित थी, जिसका उद्देश्य था - मनुष्य को ज्ञान, आचरण, धर्म, नीति, तथा आत्मबोध के मार्ग पर अग्रसर करना। शिक्षा का माध्यम केवल पाठ्य विषयों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक जीवन पद्धति थी - जिसमें शिष्य को संपूर्ण जीवन के लिए तैयार किया जाता था। इस व्यवस्था में पाठ्यक्रम (Curriculum) और शिक्षण विधियाँ (Teaching Methods) दोनों का समन्वित स्वरूप अत्यंत समृद्ध और वैज्ञानिक था।

प्रस्तावना -

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली विश्व की सर्वाधिक प्राचीन और समृद्ध शिक्षण परंपराओं में से एक मानी जाती है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति न केवल आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम थी,

बल्कि जीवन के प्रत्येक आयाम को संतुलित करने वाली एक समग्र प्रणाली थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली केवल ज्ञान देने की प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसी समग्र व्यवस्था थी जिसमें जीवन के सभी पक्षों - जैसे नैतिकता, व्यवहार, आचार, अध्यात्म और व्यावहारिक जीवन - को संतुलित रूप से विकसित किया जाता था। इस व्यवस्था की पाठ्यचर्या अत्यंत विविध और समृद्ध थी, जिसमें वेद, उपनिषद, व्याकरण, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, संगीत, नाट्य, युद्ध-कला, कृषि और नीतिशास्त्र जैसे विषयों को स्थान मिला था। यह पाठ्यचर्या शिष्य की रूचि, क्षमता और आश्रम के उद्देश्य के अनुसार लचीली होती थी, जो उसे न केवल विद्वान बल्कि एक जिम्मेदार और संतुलित जीवन जीने वाला नागरिक बनाने की दिशा में प्रेरित करती थी।

जहाँ तक शिक्षण विधियों का प्रश्न है, भारतीय ज्ञान परंपरा संवादात्मक और अनुभवाधारित पद्धतियों पर आधारित थी। 'गुरु-शिष्य परंपरा' इसका प्रमुख आधार थी, जिसमें शिक्षा मौखिक, व्यक्तिगत और जीवन के निकट हुआ करती थी। यहाँ शिष्य केवल पाठ सुनकर याद नहीं करता था, बल्कि गुरु के साथ **श्रवण (सुनना), मनन (विचार करना) और निदिध्यास (आत्मसात करना)** की त्रिस्तरीय प्रक्रिया से गुजरता था। प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद, दृष्टांत, कथा, अभ्यास और आचरण के माध्यम से शिक्षण होता था। यह पद्धति न केवल ज्ञान को व्यवहार से जोड़ती थी, बल्कि शिक्षण को एक जीवंत, सृजनात्मक और चेतना-आधारित प्रक्रिया बनाती थी। इस प्रकार पाठ्यचर्या और शिक्षण विधि दोनों मिलकर एक ऐसी शिक्षण प्रणाली का निर्माण करती थीं जो आज भी आधुनिक शिक्षा को दिशा देने में सक्षम है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षण विधियाँ -

प्राचीनकाल में शिक्षण विधियाँ अत्यंत समृद्ध, जीवन के अनुकूल और बहुआयामी थीं। उस समय न तो कागज़ की उपलब्धता थी, न ही मुद्रणालय की सुविधा, इसलिए शिक्षा मौखिक परंपरा पर आधारित थी। गुरुकुलों में विद्यार्थी गुरु के सान्निध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे और उन्हें पाठ्य विषयों को कंठस्थ करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। लेकिन इस कंठस्थता का उद्देश्य केवल रटंत नहीं था, बल्कि पाठ का गहरा अर्थ समझना और उसे जीवन में उतारना भी आवश्यक था। विद्यार्थियों को वेद, उपनिषद, स्मृति, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, शिल्प, संगीत आदि विषयों में पारंगत किया जाता था, परंतु यह शिक्षा केवल शाब्दिक न होकर व्यावहारिक और व्यवहारिक होती थी।

शिक्षा प्रक्रिया में वाद-विवाद या शास्त्रार्थ को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस विधि के माध्यम से विद्यार्थियों में तर्कशक्ति, स्वतंत्र चिंतन और वक्तृत्व कौशल का विकास होता था। वे

किसी विषय पर गहराई से सोचकर अपने विचार प्रस्तुत करते थे और दूसरों के विचारों को सुनकर उस पर प्रतिक्रिया देते थे। इससे उनमें संवाद कौशल और निर्णय क्षमता का भी विकास होता था। इस प्रकार की संवादात्मक विधियाँ न केवल ज्ञान की गहराई तक पहुँचने का माध्यम थीं, बल्कि वे शिष्य को आत्मविश्वासी, विवेकशील और सामाजिक रूप से उत्तरदायी भी बनाती थीं।

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षण प्रणाली का प्रमुख स्तंभ थी। इसमें गुरु केवल एक शिक्षक नहीं, बल्कि जीवन के मार्गदर्शक होते थे। उपनिषदों में शिक्षण प्रक्रिया को तीन चरणों में विभाजित किया गया है - **श्रवण, मनन और निदिध्यासन।** श्रवण का अर्थ है–गुरु के वचनों को एकाग्रचित्त होकर सुनना, मनन का अर्थ है–उस ज्ञान पर गहराई से विचार करना, और निदिध्यासन का अर्थ है–उस ज्ञान को अपने व्यवहार और जीवन में आत्मसात करना। यह त्रिक प्रक्रिया केवल सैद्धांतिक ज्ञान नहीं देती थी, बल्कि व्यक्ति को संस्कारित और समाजोपयोगी बनाती थी। इसीलिए शिक्षा के अंत में गुरु, शिष्य को उसके सामाजिक और पारिवारिक कर्तव्यों की भी याद दिलाते थे।

उपमा विधि- कुछ अवधारणाएँ जो तर्क से आसानी से नहीं समझाई जा सकती थीं, उनके लिए **उपमा विधि** का सहारा लिया जाता था। उदाहरणस्वरूप, याज्ञवल्क्य ने आत्मा के ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए ढोल, शंख और वीणा की ध्वनि का प्रयोग किया। इससे जटिल आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों को आम जीवन से जोड़कर सरलता से समझाया जाता था।

समन्वय विधि- का भी उपयोग होता था, जिसमें विभिन्न मतों, शास्त्रों और परंपराओं को एक-दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। यह विधि शिष्यों को समावेशी दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती थी, जिससे उनमें सहिष्णुता, समन्वय और विवेकशीलता का विकास होता था। इसमें वाद-विवाद की खण्डनात्मक पद्धति के स्थान पर समन्वय विधि का प्रयोग होता है। वृहदारण्यक उपनिषद के चतुर्थ प्रकरण में महर्षि याज्ञवल्क्य राजा जनक को बतलाते हुए छः आध्यात्मिक दृष्टिकोणों का समन्वय करते हैं। इसी प्रकार के उदाहरण छान्देग्य, प्रश्न तथा अन्य उपनिषदों में भी हैं।

शास्त्रार्थ अथवा वाद-विवाद विधि- प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में *शास्त्रार्थ* अथवा *वाद-विवाद विधि* का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था। यह विधि केवल ज्ञान को अभिव्यक्त करने का माध्यम नहीं थी, बल्कि तर्कशक्ति, विश्लेषण क्षमता और संवाद कौशल को विकसित करने का भी एक प्रभावी उपकरण थी। धर्मशास्त्र काल में गुरुकुलों में निरंतर वाद-विवाद आयोजित होते थे, जिनमें साहित्य, काव्य, न्याय और दर्शन के विद्यार्थी भाग लेते थे। वे अपने पक्ष के सिद्धांतों का तर्कपूर्ण समर्थन करते और विरोधी विचारों का खंडन करते थे। इस पद्धति से विद्यार्थियों में स्वतंत्र चिंतन और मौलिक विचार प्रस्तुत करने की क्षमता का विकास होता था। *विष्णुपुराण, वायुपुराण* और

ब्रह्माण्डपुराण में वाद-विवाद की प्रासंगिकता और इसके दुरुपयोग के दुष्परिणामों का उल्लेख मिलता है, जैसे वसु मुनि का अधःपतन–जो यह स्पष्ट करता है कि शास्त्रार्थ ज्ञान की मर्यादित अभिव्यक्ति का माध्यम होना चाहिए, न कि अहंकार का प्रदर्शन।

ग्रंथपाठ और पुनरावृत्ति - इसके साथ ही, शिक्षा में *ग्रंथपाठ और पुनरावृत्ति* को भी विशेष महत्व दिया गया था। ब्रह्मचारी अवस्था में वेदों तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन और पुनःपाठ नियमित रूप से कराया जाता था। शिक्षा मौखिक थी, अतः पाठ्य सामग्री को कंठस्थ करना आवश्यक होता था। गुरुओं द्वारा समय-समय पर पाठ की आवृत्ति और अभ्यास करवाया जाता था जिससे शिष्य की स्मरण शक्ति और समझ दोनों विकसित हो सकें। *मनु* और *याज्ञवल्क्य* ने तो वेद विस्मरण को *ब्रह्महत्या* जैसा घोर पाप बताया है। इससे स्पष्ट होता है कि वेदाध्ययन को केवल औपचारिक ज्ञान न मानकर धार्मिक और नैतिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा जाता था। ब्रह्मचारी को संयमित जीवन शैली अपनानी पड़ती थी - जैसे मांस, मधु, नृत्य-संगीत, आदि से दूर रहना, जिससे उसका ध्यान पूर्णतः अध्ययन में केंद्रित रहे।

भिक्षाटन- भी उस समय की शिक्षण प्रणाली का एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक पक्ष था। ब्रह्मचारी को दिनचर्या का भाग बनाकर द्विजों के घर-घर जाकर भिक्षा माँगनी पड़ती थी। यह अभ्यास केवल निर्वाह के लिए नहीं, बल्कि विनम्रता, आत्मसंयम और समाज से संपर्क का माध्यम भी था। *विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण* तथा *मनुस्मृति* आदि ग्रंथों में भिक्षाटन की मर्यादा, विधि और उद्देश्य को विस्तार से समझाया गया है। विद्यार्थी को केवल एक ही व्यक्ति का अन्न न ग्रहण करने की शिक्षा दी गई, जिससे वह किसी विशेष गृहस्थ पर निर्भर न हो और समान रूप से सभी से जुड़ा रहे। भिक्षा मांगते समय '*भवति भिक्षां देहि*' जैसे विनम्र शब्दों का प्रयोग कर विनय और कृतज्ञता का अभ्यास कराया जाता था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों के जीवन, अनुशासन, पाठ्यक्रम एवं अध्ययन विधियों की विशेषताएँ -

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी से केवल विद्या अर्जन की नहीं, बल्कि एक *आदर्श, संयमित और अनुशासित जीवन* जीने की अपेक्षा की जाती थी। शिष्य अपने जीवन में अनेक कठोर नियमों का पालन करता था, जो उसके शारीरिक, मानसिक और नैतिक शुद्धिकरण में सहायक होते थे। असत्य भाषण, अनावश्यक वाद-विवाद, प्रमाद, वासना, लोभ, कटु वचन आदि पर पूर्णतः प्रतिबंध था। *मत्स्य पुराण, वायु पुराण* और *ब्रह्मांड पुराण* में ब्रह्मचारी के लिए मृदु स्वभाव, इन्द्रियनिग्रह, दण्ड, मेखला, जटा और मृगचर्म धारण करने जैसी जीवनशैली का उल्लेख किया गया है। *कालिदास* और *बाणभट्ट* जैसे कवियों के ग्रंथों में भी विद्यार्थियों के सरल व संयमी

जीवन, कुश की चटाई पर शयन, उत्तरीय और वास वस्त्र पहनने, तथा संध्या, जप, स्नान, होम आदि दैनिक कर्तव्यों के पालन की पुष्टि मिलती है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में पाठयक्रम -

पाठयक्रम की दृष्टि से वैदिक और उत्तरवैदिक काल अत्यंत समृद्ध और विकसित थे। *ऋग्वैदिक काल* में गुरु शिष्यों को वैदिक सूक्तों, मंत्रों और वीरगाथाओं का अध्ययन कराते थे, जो तत्कालीन कवियों द्वारा रचित होते थे। इन ग्रंथों को अपौरुषेय न मानते हुए, उनके रचनाकार ऋषियों ने सृष्टि, खगोल, प्रकृति और ब्रह्मांड के रहस्यों को जानने का प्रयास किया। उन्होंने चन्द्र-सूर्य की गति और पंचांग निर्माण जैसे ज्योतिषीय विज्ञान में भी प्रगति की। शिक्षा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं थी, बल्कि सामाजिक एवं व्यावसायिक जीवन से भी जुड़ी थी। पिता-पुत्र परंपरा से *कृषि, व्यापार, शिल्प-कला* आदि की व्यावसायिक शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियाँ भी घरों में कपड़ा बुनने, रंगाई, कढ़ाई, टोकरी बनाना आदि शिल्पों में पारंगत होती थीं और इन कार्यों की शिक्षा बच्चों को पारिवारिक वातावरण में प्राप्त होती थी।

उत्तरवैदिक काल में वैदिक साहित्य को अपौरुषेय मानते हुए उसे संरक्षित करने पर अधिक बल दिया गया। इसके अध्ययन हेतु ***व्याकरण, निरुक्त, छन्द और दर्शन*** जैसे सहायक विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया। ताण्ड्य ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि गणित, छन्द-शास्त्र और भाषा की भी उच्च शिक्षा दी जाती थी, जिससे यह सिद्ध होता है कि उत्तर भारत के लोग भाषा और व्याकरण के विद्वान माने जाते थे। *उपनिषदों* में पाठ्यविषयों की विविधता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है - वेद, इतिहास, पुराण, ब्रह्मविद्या के साथ-साथ व्याकरण, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, सैनिक विज्ञान, फलित ज्योतिष और सर्पविद्या जैसी उपयोगी विद्याओं का भी उल्लेख है। यद्यपि इनमें *परा-विद्या* (आध्यात्मिक ज्ञान) को सर्वोच्च माना गया, तथापि *अपरा-विद्याएँ* भी शिक्षा का आवश्यक हिस्सा थीं। क्षत्रिय वर्ग को युद्ध विद्या और अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास कराया जाता था, वहीं वैश्य वर्ग अपने परिवारों से कृषि और व्यापार की शिक्षा ग्रहण करता था।

इस काल में *कन्याओं को भी शिक्षा का अधिकार* था। कुछ ग्रंथों से ज्ञात होता है कि कन्याओं का *उपनयन संस्कार* होता था और वे वैदिक साहित्य का अध्ययन करती थीं। उन्हें नृत्य, गायन जैसी कलात्मक विद्याओं की शिक्षा भी दी जाती थी। काल के अंत तक आर्य जाति लेखन कला से परिचित हो गई थी और भोजपत्रों पर ग्रंथ लेखन आरंभ हुआ, फिर भी तत्कालीन शिक्षा प्रणाली में लेखन का उतना महत्व नहीं था जितना *मौखिक परंपरा और कंठस्थ अध्ययन* को दिया जाता था।

धर्मशास्त्रों के काल में वेदों के संरक्षण के लिए सूत्र साहित्य की रचना हुई। सूत्रों में वैदिक सिद्धांतों को संक्षेप, सुसंगठित और कंठस्थ करने योग्य रूप में प्रस्तुत किया गया। ***शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष*** - इन वेदांगों को छात्रों के लिए आवश्यक अध्ययन विषय माना गया। वेदांगों का उद्देश्य केवल विद्या-अर्जन नहीं, बल्कि वैदिक साहित्य का गहन अर्थ समझकर उसकी रक्षा और प्रचार करना था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिष्य का *सर्वांगीण विकास* - शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक - एक लक्ष्य के रूप में विद्यमान था, जिसे विविध शिक्षण विधियों, अनुशासनों, पाठ्यविषयों और सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा क्रियान्वित किया गया।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में पाठ्यविषयों की विविधता, गहराई और व्यापकता अद्वितीय थी। ब्राह्मण विद्यार्थियों द्वारा वेद, वेदांग, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, स्वरविज्ञान, शकुन-स्वप्न विज्ञान, श्लोक रचना, कोशकला, शरीर रचना, शुभाशुभ संकेतों की व्याख्या जैसे विषयों का अध्ययन किया जाता था। *कौटिल्य* ने अपने *अर्थशास्त्र* में त्रयी (तीनों वेद), आन्वीक्षिकी (तर्क व दर्शन), वार्ता (कृषि, पशुपालन व वाणिज्य) तथा दण्डनीति (राजनीति) को अत्यावश्यक विद्याओं के रूप में स्वीकार किया है। राजकुमारों को इन विषयों के अतिरिक्त इतिहास, पुराण, आख्यायिका, नीति, युद्धविद्या, और दण्ड व्यवस्था की भी गहन शिक्षा दी जाती थी। मनु ने वैश्यों के लिए व्यापार, कृषि, पशुपालन, वस्त्र, धातु, रत्न, सुगंध, बीज-ज्ञान, नाप-तोल, हानि-लाभ का अनुमान, तथा विभिन्न देशों और भाषाओं की जानकारी को आवश्यक बताया है। *महाभारत* में वर्णित है कि चारों वर्णों के लोगों को वेद सुनने और उन पर विचार करने का अधिकार था।

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी तक ब्राह्मण विद्यार्थियों को ही धार्मिक और वैदिक शिक्षा प्राप्त करने की विशेष सुविधा प्राप्त थी, परंतु उसी काल से दर्शन, विधिशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, साहित्य, काव्यशास्त्र आदि विषय भी लोकप्रिय हो गए। *गुप्त काल* में विद्यार्थियों द्वारा अठारह विद्याओं का अध्ययन किया जाता था - जिनमें **चार वेद, छह वेदांग, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद और अर्थशास्त्र** प्रमुख थे। इस काल में चिकित्सा विज्ञान, शल्य चिकित्सा, राजनीति, धातुविज्ञान आदि धर्मेतर विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी, किन्तु 500 ई. के बाद ब्राह्मणों ने उपयोगी कलाओं और व्यवसायिक विषयों की शिक्षा देना लगभग बंद कर दिया। कन्याओं का *उपनयन संस्कार* इस काल तक होता था और वे वैदिक ग्रंथों का अध्ययन करती थीं। कालान्तर में जब कन्याओं की विवाह की आयु घटा दी गई, तो उनके वैदिक अध्ययन पर रोक लग गई, परन्तु उच्चकुल की कन्याओं को अब भी संस्कृत साहित्य, संगीत, नृत्य और चित्रकला में शिक्षा दी जाती रही। *महाभाष्य* में मीमांसा दर्शन पढ़ने वाली कन्याओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जो स्त्रियों की दार्शनिक अभिरुचि का प्रमाण है।

इस काल में अन्य विषयों जैसे युद्धकला, शल्य विद्या, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, काव्य, राजनीति, रसशास्त्र, संगीत, चित्रकला, भाषा विज्ञान, और यहां तक कि द्यूत-कला तथा चौर्य विद्या तक की शिक्षा का उल्लेख मिलता है। **वात्स्यायन ने कामसूत्र में 64 कलाओं** का वर्णन किया है, जबकि *कालिदास* और *दण्डी* जैसे रचनाकारों ने विविध लौकिक विद्याओं का विस्तृत चित्रण किया है। *पाणिनी* के *अष्टाध्यायी* जैसे महान ग्रंथ और उस पर *पतंजलि* का भाष्य इस बात का प्रमाण हैं कि भाषा, लिपि और व्याकरण अध्ययन का अत्यंत उन्नत स्वरूप उस समय उपलब्ध था। *समुद्रगुप्त* जैसे शासकों की वीणा वादन और संगीत में दक्षता, नृत्य एवं कला की शिक्षा प्राप्त स्त्रियों की उपलब्धियाँ, और पुराणों में वर्णित *अश्विनी कुमारों* की चिकित्सकीय विद्या – ये सभी उस बहुआयामी शैक्षणिक परंपरा की पुष्टि करते हैं, जो केवल धार्मिक और दार्शनिक नहीं बल्कि लौकिक, वैज्ञानिक, और कलात्मक ज्ञान के सम्यक् समन्वय पर आधारित थी। इस प्रकार, प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली में शास्त्र और कला, तर्क और धर्म, विज्ञान और संस्कार - सभी को संतुलित रूप से स्थान दिया गया था।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की वर्तमान में प्रासंगिकता -

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली आज भी अत्यंत प्रासंगिक है, विशेषकर जब समकालीन शिक्षा व्यवस्था पर आलोचना हो रही है कि वह केवल डिग्री प्राप्त करने तक सीमित हो गई है और विद्यार्थियों के *सर्वांगीण विकास* की उपेक्षा कर रही है। भारत की पारंपरिक शिक्षा प्रणाली जहाँ *ज्ञान* को केवल सूचना नहीं, बल्कि *आत्मबोध और चरित्र निर्माण* का माध्यम मानती थी, आज उस सोच की पुनः आवश्यकता है। *गुरु-शिष्य परंपरा*, *श्रवण-मनन-निदिध्यासना* की त्रिपदी प्रक्रिया, जीवनोपयोगी शिक्षाएँ, अनुशासित जीवनशैली, शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास के समन्वय की दृष्टि से यह प्रणाली आज के लिए एक प्रेरणा बन सकती है।

आज के समय में जब शिक्षा व्यावसायिकता और भौतिक सफलता की ओर अधिक झुक गई है, प्राचीन शिक्षा पद्धति का मूल भाव - *मूल्यपरक शिक्षा* (value-based education), *सांस्कृतिक पहचान*, *आध्यात्मिक जागरूकता*, *संवादात्मक शिक्षण* और *अनुशासन आधारित जीवन* - युवाओं को संतुलित, जागरूक और उत्तरदायी नागरिक बनाने में सहायक हो सकते हैं। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में यदि *आचार-विचार*, *समाज सेवा*, *योग*, *ध्यान*, *संस्कृत अध्ययन*, *तर्कशास्त्र*, *संगीत*, *शिल्प*, *ध्यान-चिंतन* जैसे तत्वों को शामिल किया जाए, तो शिक्षा अधिक प्रभावशाली, सजीव और व्यावहारिक हो सकती है।

इसके साथ ही, *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* ने भी प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की पुनर्स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है। यह नीति गुरुकुल प्रणाली, मातृभाषा में शिक्षण, शास्त्रों

एवं पारंपरिक विद्याओं को पाठ्यचर्या में सम्मिलित करने, एवं *21वीं सदी की आवश्यकताओं* के साथ इनका समन्वय करने की वकालत करती है। यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की दिशा में एक *समेकित, सजीव और सार्वकालिक पद्धति* है, जिससे प्रेरणा लेकर आज की शिक्षा को अधिक मानवीय, संस्कारित और उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सकता है।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की शिक्षण विधियाँ केवल ज्ञान के संप्रेषण का माध्यम नहीं थीं, बल्कि वे शिष्य को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए तैयार करने वाली समग्र और मूल्यों पर आधारित प्रक्रिया थीं। यह परंपरा आज भी आधुनिक शिक्षण पद्धतियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है, जो ज्ञान को केवल सूचना नहीं बल्कि अनुभव और आचरण से जोड़ने का संदेश देती है।

इस प्रकार, *शास्त्रार्थ*, *ग्रंथपाठ* और *भिक्षाटन* जैसे शिक्षण अभ्यासों ने मिलकर न केवल बौद्धिक विकास सुनिश्चित किया, बल्कि विद्यार्थियों में नैतिकता, आत्मनियंत्रण, संवाद कौशल, सामाजिक दायित्व और आध्यात्मिक अनुशासन की भी स्थापना की। यह शिक्षण प्रणाली शिष्य के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य लेकर चलती थी, जिसमें शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं बल्कि व्यक्तित्व निर्माण था।

निष्कर्ष

नैतिक, आध्यात्मिक, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण था। यह शिक्षा "सा विद्या या विमुक्तये" के सिद्धांत पर आधारित थी - अर्थात जो मुक्त करे, वही सच्ची विद्या है।आज की शिक्षा प्रणाली यदि इस मूल भाव को पुनः अपनाए, तो शिक्षार्थी न केवल कुशल कर्मशील बनेंगे, बल्कि मूल्यनिष्ठ, पर्यावरण-संवेदी और आत्मबोधी नागरिक भी होंगे प्राचीन भारतीय पाठ्यक्रम केवल किताबी ज्ञान तक सीमित न होकर व्यावहारिक होती थी।

प्राचीन शिक्षण पद्धतियाँ छात्र को केंद्र में रखकर चलती थीं, जहाँ *गुरु* एक मार्गदर्शक, प्रेरक और नैतिक संरक्षक की भूमिका निभाते थे। शिक्षण केवल किताबी न होकर जीवन के अनुभवों से जुड़ा होता था, इसलिए इन विधियों में *व्यक्तिगत सहभागिता, प्रश्नोतर परंपरा* और *मौलिक चिंतन* को बहुत महत्व दिया गया। आज जब शिक्षण अधिकतर एकतरफा हो गया है, और छात्रों की जिज्ञासा को पोषित करने की बजाय रटंत प्रणाली को बढ़ावा मिल रहा है, तब यह आवश्यक हो गया है कि हम अपनी परंपरा से प्रेरणा लें।

इसी के साथ, *शिक्षण पुस्तकों* की भूमिका को भी भुलाया नहीं जा सकता। यद्यपि प्राचीन काल में शिक्षा मौखिक परंपरा पर आधारित थी, तथापि जैसे-जैसे लेखन और लिपियों का विकास हुआ, *वेद, उपनिषद, आरण्यक, धर्मशास्त्र, सूत्र, स्मृतियाँ, काव्य, महाकाव्य, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, व्याकरण, तर्कशास्त्र* जैसी अनगिनत शिक्षण-पुस्तकों का सृजन हुआ, जो आज भी विश्व की बौद्धिक धरोहर हैं। इन ग्रंथों ने न केवल भारत, बल्कि विश्व को दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, नीति और कला के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया है।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि *प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति* केवल अतीत की गाथा नहीं, बल्कि आज के और आने वाले समय के लिए भी *शिक्षा का आदर्श मॉडल* है। इसकी शिक्षण विधियाँ, पुस्तकीय ज्ञान और मूल्य-सम्पन्न दृष्टिकोण आज की प्रदूषित, यांत्रिक और मात्र प्रतिस्पर्धात्मक शिक्षा व्यवस्था को सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध कर सकती हैं। यदि हम इन परंपराओं को नवाचार के साथ पुनर्जीवित करें, तो शिक्षा एक बार फिर मानवता के उत्थान का सशक्त साधन बन सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि -

. NEP 2020

.कुमार,कृष्ण.(1999): प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति. श्री सरस्वती सदन.नयी दिल्ली.

. मजूमदार एन. एन (1965): प्राचीन भारत में शिक्षा, कोलकाता, ओरिएंट बुक कंपनी

. सलूजा चंद किरण (2023): शिक्षा प्रतिष्ठान, वेद भवन भारतीय परिपेक्ष, दिल्ली, संस्कृत संवर्धन

. गुरु दत्त (2013): हमारी सांस्कृतिक धरोहर, नई दिल्ली, हिंदी साहित्य सदन

. भागवत मोहन (2021): यशस्वी भारत, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन

.शर्मा निशानंद (1988): भारतीय वांग्मय में शिक्षा के वैशाली, प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थानम

. मुखर्जी आर. के. (1960): प्राचीन भारतीय शिक्षा, मुंबई, एशियन बुक कंपनी

. तैत्तिरीय संहिता, 6/3/10/50

. वृहदारण्यक उपनिषद, 2/4/7-10.

. विष्णुपुराण, 3/12/22.

. वायुपुराण, 1/102; ब्रह्माण्डपुराण 1/1/93.

. मनुस्मृति, 11/56

. अष्टादशस्मृति में शंख स्मृति, 3/4।

. विष्णुस्मृति, 1/22.

. रामायण 1/18.

article IKS Curriculum.docx

ORIGINALITY REPORT

0%	0%	0%	0%
SIMILARITY INDEX	INTERNET SOURCES	PUBLICATIONS	STUDENT PAPERS

PRIMARY SOURCES

1	Submitted to Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration of Management Student Paper	<1%

Exclude quotes	On	Exclude matches	Off
Exclude bibliography	On		